Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)
VOL- VIII ISSUE- XI NOVEMBER 2021 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 7.149 ISSN 2349-638x

महात्मा गांधी के चिन्तन में पर्यावरण

मांगीलाल
शोधार्थी (राजनीति विज्ञान)
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

मोहनदास कर्मचन्द गांधी ऐसे अद्‌भुत महात्मा हैं जिन्होंने जगत के महानतम धार्मिक एवं दार्शनिक आचार्यों से सनातन व सार्वभौमिक तथ्यों को ग्रहण कर व्यावहारिक जीवन के लिए उपयुक्त एक नवीन दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत है। यद्यपि गांधी शास्त्रीय दार्शनिक नहीं है किन्तु महात्मा गांधी का भारतीय चिन्तकों में अनन्य स्थान है। जगत के अन्य महान् व्यक्तियों से वे इस अर्थ में भिन्न हैं कि वे जन्म से ही महान नहीं थे। उन्होंने दो सद्‌गुणों– सत्य के प्रति निष्ठा तथा प्राणिमात्र के प्रति प्रेम को परीक्षण द्वारा व्यावहारिक जीवन में उतारकर अपने को महान बनाया। इस नैतिक नेतृत्व ने गांधी को भारत के ही नहीं अपितु विश्व के महान् नैतिक–धार्मिक चिन्तकों की पंक्ति में बैठा दिया है। उनका जीवन दर्शन एक सच्चे सन्त को व्याख्यायित करता है।

मोहनदास करमचन्द गांधी का जन्म २ अक्टूबर, १८६९ को काठियावाड़ गुजरात में हुआ था। बाल्यकाल में उनके उर्वर मस्तिष्क पर रामायण, भागवत आदि ग्रन्थों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा, जिसके फलस्वरूप धर्म एवं नैतिकता में उनकी दृढ़ आस्था हो गई। हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण कर कानून के अध्ययन हेतु वे इंग्लैण्ड चले गये तथा १८९१ में बैरिस्टर बनकर भारत लौटे। यहाँ अल्पवास के पश्चात् वे दक्षिण अफ्रीका चले गये, जहाँ कई वर्षों तक उन्होंने जातिगत भेदभाव के विरुद्ध अहिंसक आन्दोलन चलाया। भारत लौटने पर उन्होंने स्वतंत्रता–संग्राम का नेतृत्व किया। आधुनिक भारत दर्शन में गांधी का विशिष्ट योगदान नीति–मीमांसा तथा समाज दर्शन के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने में निहित है।

गांधी नैतिक युक्ति को अत्यधिक महत्त्व देते हैं। उनके लिए अन्तरात्मा ईश्वर की आवाज है, कर्त्तव्य का आदेश है, जिसका उन्होंने सदैव पालन किया। यद्यपि गांधी कानून के विद्यार्थी रहे तथा उन्हें कोई शास्त्रीय दार्शनिक प्रशिक्षण भी प्राप्त नहीं था तथापि भारतीय एवं पाश्चात्य धर्म ग्रन्थों के व्यापक अध्ययन एवं विभिन्न विषयों पर विद्वानों से चर्चा एवं वार्तालाप के फलस्वरूप उन्होंने सत्य का अनुसंधान किया और वे युगपुरुष के रूप में उभरकर सामने आये।

सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में– "गांधीजी उन पैगम्बरों में से हैं, जिनमें हृदय का शौर्य, आत्मा का शील और निर्भीक व्यक्ति की हंसी के दर्शन होते हैं। उनका जीवन और उनके उपदेश आत्मा में आस्था, उसके रहस्यों के प्रति आदरभाव, पवित्रता में निहित सौन्दर्य, जीवन के कर्त्तव्यों को स्वीकार तथा चरित्र की प्रामाणिकता जैसे मूल्यों के साक्षी है, जो इस राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं से परे सार्वभौम है और युगों से ही इस देश की धरोहर रहे हैं।"१

गाँधी को जिन पुस्तकों ने प्रभावित किया, उनमें गीता, रामायण, महाभारत, बाइबल, कुरान आदि धर्मग्रन्थों के अतिरिक्त मैक्समूलर की पुस्तक 'व्हाट इट कैन टीच अस' आर्नल्ड की – 'लाइट ऑफ एशिया' ऐनीबेसेन्ट की – 'हाउ आई बिकेम ए थियोसाफिस्ट', रस्किन की 'अन टू दिस लास्ट' तथा कार्लाइल की – 'हीरोज एण्ड हीरो – वर्शिप' आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

विवेच्य विषय महात्मा गांधी के चिन्तन में पर्यावरण को देखें तो महात्मा गांधी के चिन्तन में पर्यावरण का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। वे बहुत ही कोमल चित्त वाले दीन–दुखियों पर दयावान तथा मन, वचन और कर्म से ईश्वर की विशुद्ध भक्ति करने वाले होते हैं। गाँधी के चिन्तन, दर्शन को उनके प्रकीर्ण लेखन और उक्तियों से ही संश्लिष्ट किया जा सकता है।

गांधी का जीवन दर्शन उनके सच्चे संत की भांति जीवन जीने के अनुभवों पर आधारित है, जो कि सदैव प्रकृति प्रेमी है तथा शुभ कर्मों में निरत रहने का सन्देश है। गांधी जन सेवा के हित में इन्द्रिय–निग्रह और अहिंसा को अचूक अस्त्र की भांति मानते हैं। उनका कहना है– "मेरा इंद्रिय–निग्रह और अहिंसा दोनों प्राकृतिक अनुभव की उपज है, जनसेवा के हित में इन्हें अपनाना आवश्यक था।

गांधी जी के अनुसार 'पर्यावरण' शब्द बहुत व्यापक है। इस शब्द का निर्माण दो शब्दों से मिलकर हुआ है। 'परि' अर्थात् जो हमारे चारों ओर है तथा 'आवरण' यानि जो हमें चारों ओर से घेरे हुए है। पारिस्थितिकी और भूगोल में यह शब्द अंग्रेजी के environment के अर्थ में प्रयुक्त होता है। पर्यावरण उन सभी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों की समष्टिगत इकाई हैं जो किसी जीवधारी अथवा पारितंत्रीय आबादी को प्रभावित करते हैं तथा उनके स्वरूप, जीवन और जीविता को तय करते हैं। सामान्य अर्थों में यह हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले सभी जैविक और अजैविक तत्त्वों, तथ्यों, प्रक्रियाओं और घटनाओं के समुच्चय से निर्मित इकाई है। हमारे चारों ओर व्याप्त जीवन की प्रत्येक घटना इसी में सम्पादित होती है तथा मानव की समस्त क्रियाओं यथा– रहन–सहन, आचरण आदि से पर्यावरण स्वत: प्रभावित होता है क्योंकि जीवधारी प्राणी और उसके पर्यावरण के बीच अन्योन्याश्रय सम्बन्ध स्वत: होता ही है। इसीलिए भारतीय संस्कृति में पर्यावरण के सभी जैविक एवं अजैविक घटकों की परस्परता को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है।

विश्व की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कोई भी संस्कृति पर्यावरण को साधन बनाए बिना पनपी ही नहीं। ज्यों–ज्यों मानव ने विकास की सीढ़िया चढ़ी उसने अपनी एक संस्कृति विकसित की। मनुष्य आरम्भ में अबोध था, इसलिए उसने अपनी चेतना का विस्तार अपने ढंग से किया। दृश्य और अदृश्य जगत में उठने वाले अपने सवालों को अपने ज्ञान, चेतना और बोध की क्रिया के साथ जोड़ा, जिससे अनेक परम्पराएँ, अनुष्ठान, लोकवार्ता मूल्य और सृजनात्मक कलाएं विकसित हुई, उसमें उसकी आंतरिकता, बौद्धिकता और अभिरूचियाँ भी सम्मिलित होती है और व्यवहार भी। सच तो यह है कि संस्कृति मानव मस्तिष्क की अंतर्निहित संरचना है जो उसके भौतिक और सामाजिक जीवन को ही नहीं इतिहास को भी प्रभावित करती हैं। इसमें कोई सन्देश नहीं कि प्रारम्भिक मानव को अपनी उतरजीविता के लिए पर्यावरण की भौतिक गुणवता पर निर्भर रहना पड़ा, जिससे उसने प्रकृति के रहस्य, धर्म, मूल्य, सौन्दर्य, आत्मीयता आदि कई आधारों पर इसे परिभाषित करने का प्रयास किया। फलत: उसने पृथ्वी, आकाश, नक्षत्र, बादल, नदी, सागर, वृक्ष, पशु, पक्षी, पर्वत आदि को एक विशिष्ट सम्बन्ध के साथ देखा और अपने जीवन के लिए जरूरी माना।

मनुष्य को प्रकृति का अभिन्न अंग मानने वाले तत्त्व दृष्टा ऋषि–मुनि जानते थे कि जड़ जगत अर्थात् पृथ्वी, नदियां, पर्वत आदि और चेतन अर्थात् मनुष्य, पशु–पक्षी और वन इन सभी घटकों या इकाइयों के पारस्परिक समानुपातिक सामंजस्य से ही पर्यावरण संतुलित रह सकता है। उनको यह भी मालूम था कि पर्यावरण के किसी अंग अथवा घटक में व्याघात होने से उसका परिणाम सम्पूर्ण पर्यावरण प्रणाली को प्रभावित कर सकता है। इसीलिए उन्होंने सदाचार को प्रतिष्ठित किया। प्राणी मात्र के प्रति सहृदयता, दया और स्नेह की भावना पर बल दिया था अर्थात् जियो और दूसरों को भी जीने दो के भाव को प्रतिष्ठित किया। वैदिक वाङ्मय के माध्यम से मानव को शिक्षा दी गई है कि पशु–पक्षियों को अपने से हेय न समझें और नदियों, पर्वतों, वृक्षों और प्रकृति के अन्य अंग

उपांगों में निहित उस महान दैवीय शक्ति के दर्शन करें। लेकिन विडम्बना है कि आज हमारी सोच पूर्णतया पश्चिमी विचारधारा से प्रभावित हो गई है। विश्व संस्कृति को अनेकों उज्ज्वल सूत्र प्रदान करने वाली हमारी संस्कृति आज अपने ही घर में विखण्डित हो रही है। मनुष्य ने बेहद असंवेदनशीलता के साथ प्राकृतिक संसाधनों का दोहन किया है। मनुष्य की व्यावसायिक बुद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधन समाप्ति के कगार पर हैं।

उल्लेख करना आवश्यक होगा कि पर्यावरण के इस परिदृश्य ने अपना रंग दिखाना शुरू कर दिया है। सदियों से संतुलित जलवायु के कदम डगमगाने लगे हैं। परिणाम स्वरूप धरती का ताप ऊपर चढ़ रहा है। मौसम वैज्ञानिकों की रिपोर्ट्स खुलासा करती है कि वर्ष २१०० तक धरती का तापमान १.४ डिग्री से लगभग ५.८ डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाएगा। 'इंटरनेशनल सेन्टर फार रिसर्च आन एग्रोफोस्ट्री के महानिदेशक डॉ. डेनिस गेरीटी, यूनाइटेड नेशन्स एन्वायरमेन्ट प्रोग्राम के निदेशक डॉ. कलूस टोपर सहित भारत के कृषि और पर्यावरणविदों ने एक स्वर में इस बात को दोहराया है कि आने वाले दिन जलवायु परिवर्तन के भीषणतम दिन होंगे जो कृषि उत्पादकता पर चोट, जल, दबाव, बाढ़, चक्रवात, सूखा, अकाल जैसी गम्भीर परिस्थितियों को जन्म देंगे। इन तथ्यों को नकारा नहीं जा सकता। परिणाम सामने दिख रहे हैं। धरती के बढ़ते तापमान के कारण शनैः शनैः ध्रुवों की बर्फ पिघलनी प्रारम्भ हो चुकी है जिससे महासागरों का जलस्तर बढ़ने लगा है, जिससे समुद्र तटीय प्रदेशों के सागर में समाने का खतरा बढ़ता जा रहा है। वन की कमी के साथ–साथ पीने के पानी की उपलब्धता भी घटती जा रही है। प्रदूषण और वनों की अन्धाधुंध कटाई ने जन स्वास्थ्य को भी प्रभावित किया है। अनेक संक्रामक रोग फिर से सिर उठाने लगे हैं। वर्तमान में ब्व्टप्क.१९ जैसी महामारी से विश्व जूझ रहा है। यही हाल रहा तो इस बदलते पर्यावरण के कारण जल्दी ही धरती बेहाल नजर आने लगेगी। इसलिए धरती को बदहाली से बचाने के लिए कुछ ठोस पहल करनी होगी। इसे अब एकदम रोकना तो सम्भव नहीं है किन्तु कुछ सावधानियाँ बरत कर इसकी गति को कम किया जा सकता है।

महात्मा गांधी के अनुसार शुद्ध पर्यावरण मानव का नैसर्गिक जन्म सिद्ध तथा मौलिक अधिकार है। इसीलिए वेदों में ब्रह्माण्ड, पृथ्वी, अंतरिक्ष जल, ओषधि, वनस्पति, विश्वदेव ब्रह्मा आदि सभी सूक्तों मे में शांति की कामना की गई है। अथर्ववेद में पृथ्वी को माता और मानव को उसका पुत्र माना गया है। हमारी संस्कृति में वन्यजीवों, वनस्पतियों, वृक्षों इत्यादि को देवताओं के वाहन के रूप में स्वीकार किया गया है। भारतीय संस्कृति की समग्रता पूरी तरह से प्रकृति में निहित होने के कारण ही भारतीय संस्कृति में प्रकृति को ब्रह्ममय मानकर संरक्षित करने का आह्वान किया गया है।

विवेच्य विषय में हम आगे बढ़ें तो भारतीय साहित्य और दर्शन पूरी तरह से पर्यावरण केन्द्रित रहे हैं। वेदों, उपनिषदों, पुराणों, स्मृतियों, सूत्र–ग्रंथों इत्यादि में सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल रूप की प्रतिष्ठा हुई है। महात्मा गांधी के शब्दों में

भारतीय संस्कृति की आत्मा वेद है,
उपनिषद् उसका तत्त्व है,
भगवद्गीता उसका हृदय है,
रामायण और महाभारत उसकी आँखें हैं,
सत्य उसका श्वास है,
धर्म उसका रक्षा कवच है,
विचार उसका कलेजा है,
मर्यादा उसकी शोभा है और
विवेक उसकी धड़कन है।

भारतीय संस्कृति में आर्य भूमिपुत्र है और पृथ्वी माता है और पर्जन्य पिता है।

गांधी जी के मतानुसार भारतीय संस्कृति और पर्यावरण का अत्यन्त गहरा सम्बन्ध रहा है। भारतीय संस्कृति प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जगत में घटित होने वाली समस्त क्रियाओं को पर्यावरण के अन्तर्गत समाहित करती है। इसके अतिरिक्त मानसिक विचार, अध्यात्म, संस्कृति तथा समाज भी पर्यावरण के ही आवश्यक अंग हैं।

भारतीय संस्कृति में प्रकृति एवं पर्यावरण संरक्षण का विशेष महत्त्व है। प्रकृति के

सान्निध्य में मनुष्य, संस्कृति और संस्कारों को पूर्ण करता है। पर्यावरण भारातीय संस्कृति के मूल स्वरूप परम्पराओं, रीति–रिवाजों, मूल्यों, विश्वासों, व्रतों, त्योहारों और लोकगीतों में पूर्णतया समाहित है। हमारे ऋषि–मुनियों ने पर्यावरण संतुलन हेतु प्रकृति की उपासना के स्वर मुखरित किए हैं। वैदिक विचारधारा के अनुसार विश्व प्राकृतिक व्यवस्था के नियमों में बंधा हुआ है, और पर्यावरण के समस्त घटक इसी व्यवस्था में नियमित गति और क्रमबद्धता से कार्य करते हैं। हमारे ऋषियों, मुनियों, तपस्वियों, चिंतकों तथा साधु संतों ने प्रकृति के सान्निध्य में रहकर ज्ञानार्जन किया, तथा अनेक सर्व कल्याणकारी धर्म ग्रन्थों की रचना की और अपनी सभ्यता और संस्कृति की समतामूलक प्रकृति से विश्व समुदाय में परचम लहराया।

लेकिन विडम्बना है, कि आज हमारी सोच पूर्णतया पश्चिमी विचारधारा से प्रभावित हो गई है। विश्व संस्कृति को अनेकों उज्ज्वल सूत्र प्रदान करने वाली हमारी संस्कृति आज अपने ही घर में विखण्डित हो रही है। मनुष्य ने बेहद असंवेदनशीलता के साथ प्राकृतिक संसाधनों का दोहन किया है। मनुष्य की व्यावसायिक बुद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधन समाप्ति के कगार पर है, सम्भावना व्यक्त की जा रही है कि, वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य के तीव्रतम विकास का चक्र अचानक एक दिन रूक जाएगा।

पूंजीवादी विकास की अधी दौड़ की वर्तमान गति आज वैश्विक समाज के लिए चिंता का विषय है। आज विश्व स्तर पर पर्यावरणविद् वैज्ञानिक, समाजशास्त्री, जलवायु परिवर्तन, वैश्विक तापन, जैव–विविधता विनाश, भूमि क्षरण, भूमिगत जल–स्तर में गिरावट जैसी गम्भीर समस्याओं के समाधान खोजते हुए पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रयासरत है।

आज के वैज्ञानिक तथा विकासवादी युग में एक बार पुनः हमारी संस्कृति में निहित समन्वयकारी तत्त्वों से संयुक्त होने की आवश्यकता है, ताकि विज्ञान और विकास के समन्वय द्वारा मानव और पर्यावरण की अविच्छिन्नता कायम की जा सके। आज आवश्यकता है, संस्कृति द्वारा मानव हृदय का परिष्कार कर उद्दात्त मूल्यों के प्रकाश में आधुनिक विकास के संतुलित समन्वय द्वारा समाज को सुदृढ़ता प्रदान कर ऊँचाइयों की ओर ले जाने की।

वेदों में भूमि को माता, अंतरिक्ष की भ्राता और द्युलोक को पिता समान माना गया है। अथर्ववेद के बारहवें काण्ड में 'पृथ्वी–सूक्त' में पृथ्वी को "भूम्या असुरसृगात्मा" कहते हुए पृथ्वी की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने पर बल दिया गया है। यजुर्वेद में कहा गया है भूमि में प्राण, रक्त और आत्मा है अतः उसे हिंसित, पीड़ित और प्रदूषित करना अपराध है। "पृथ्वी मातर्मा हिंसी मा अहं त्वाय।" पृथ्वी और प्राणी मात्र में एकता का प्रसार देखना वैदिक ऋषियों के पर्यावरण बोध का उद्दात्त पक्ष है। वेदों में बार–बार आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, औषधियों इत्यादि के प्रति हिंसा न करने की बात कही गई है। वैदिक ऋषियों ने मानव और प्रकृति के मध्य संतुलन स्थापित करने के लिए ही प्रकृति में दैवी शक्ति का अनुभव किया। वेदों में यह संदेश साफ–साफ प्रेषित किया गया है कि पर्यावरणीय घटकों के संरक्षण से ही मानव पृथ्वी पर संतुलन कायम कर सकता है। उसकी उर्वरा शक्ति को नष्ट करके मानव का कल्याण नहीं हो सकता। वेदों में पृथ्वी, आकाश और अंतरिक्ष के संरक्षण की भावना में प्रकृति के सुख कारक तंतुओं को देखना प्रकृति बोध का उद्दात्त पक्ष है। ऋग्वेद में द्यावा पृथ्वी सम्बन्धी निंदनीय पापों से दूर रहने तथा प्रकृति संरक्षण में ही सर्वश्रेष्ठ ऋत् की कल्पना की गई है। समस्त मानव से ऐसे कल्याणकारी मार्ग पर चलने की कामना करते हुए कहा गया है– "ऋतुं शसंन्त ऋज दीघ्याना। इसीलिए शासकों में "मां लेखीरन्तरिक्षं मा हिंसी पृथिवीया संभव कहकर अनुरोध किया गया है, कि वे पृथ्वी के निवासी प्राणियों की रक्षा करें। वेदों में पारिस्थितिकी तंत्र में अग्नि, इन्द्र, वरुण, वायु, पूषा, सरस्वती, आदित्य, शब्द, अदिति, ब्राह्म के पालक की परस्पर अनुकूलता को बार–बार रेखांकित किया गया है। पर्यावरण तत्त्वों के संरक्षण की भावना से सम्पूर्ण जड़ चेतन पदार्थों में ईश्वरीय तत्त्व को मानकर

उनके विवेकपूर्ण उपयोग में सृष्टि के कल्याण की कामना मानी गई है। भारतीय साहित्य और दर्शन पूरी तरह से पर्यावरण केन्द्रित रहे हैं। वेदों, उपनिषदों, पुराणों, स्मृतियों, सूत्र–ग्रंथों इत्यादि में सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल रूप की प्रतिष्ठा हुई है। इन सब ग्रंथों की रचना प्रकृति के सान्निध्य में हुई, इसीलिए इनमें प्रकृति–प्रेम, प्रकृति–संरक्षण, आत्मानुभूति तथा किसी को हानि न पहुंचाने का भाव पाया जाता है।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति में न केवल चेतन पदार्थों में, बल्कि अचेतन पदार्थों में भी ईश्वरीय अंश मानकर उनकी रक्षा को धर्म माना गया है। प्रकृति के कण–कण के साथ एकात्मकता अनुभव करना भारतीय संसकृति का आदर्श रहा है। भारतीय संस्कृति की विशेषता है कि वह प्रकृति से अपनी आवश्यकतानुसार तथा प्रकृति के पुनर्भरण की व्यवस्था के साथ ग्रहण करने की पक्षधर है।

इस आलेख में भारतीय संस्कृति के अनुरूप पर्यावरण संरक्षण द्वारा प्राणी मात्र के कल्याण तथा मानव के मन, बुद्धि, संस्कार, आत्मा, सत्कर्म, सहनशीलता, धैर्य, परोपकार, सकारात्मकता आदि को विकसित करने का उद्देश्य भी समाहित है। इन सब गुणों की जागृति से समाज में समानता की भावना को बल मिलेगा, जिसका समाज, देश की प्रगति और विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

औद्योगिक युग में वर्तमान पर्यावरण संकट को देखते हुए भारतीय संस्कृति में निहित प्रकृति और मनुष्य के तादात्मय की महत्ता को समझना होगा। तभी मानव, प्रकृति पर नियंत्रण की अपेक्षा प्रकृति के प्रति गहन कौटुंबिक भाव द्वारा समन्वयात्मक दृष्टिकोण से पर्यावरण संकट के समाधान ढूंढकर, प्रकृति और मनुष्य के परस्पर सम्बन्धों में एकता द्वारा पर्यावरण की कीमत पर हो रहे विनाश को रोकने में समर्थ होगा।

निस्संदेह मानव द्वारा की जाने वाली प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष क्रियाओं द्वारा पर्यावरण को गहरे तक जो नुकसान हुआ है, उससे उबरने के लिए भारतीय संस्कृति के बताए मार्ग पर चलकर ही मनुष्य पर्यावरण की पवित्रता को बनाए रखने और इस अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को बेहतर बनाने में सक्षम हो सकता है। भारतीय संस्कृति की "वसुधैव कुटुम्बकम" की अवधारणा में निहित पर्यावरण के प्रति लगाव से आज के इस भौतिकवादी युग को नई दिशा प्रदान कर सनातन काल से चले आ रहे मूल्यों को नई पीढ़ियों में हस्तांतरित कर नैतिक दायित्व का निर्वहन भी किया जा सकेगा और साथ ही पर्यावरण संरक्षण के माध्यम से भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर को सहेज कर रखने की कला को जीवन का अभिन्न अंग बनाने की प्रवृति को बल मिलेगा। निस्संदेह भारतीय संस्कृति में वर्णित सृष्टि के विभिन्न तत्त्वों जैसे, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, जल, वन, भूमि, वृक्ष, पहाड़, पशु, पक्षी इत्यादि की परस्परता को समझकर ही पारिस्थितिक तंत्र को सुरक्षित रखा जा सकता है। अतः भारतीय संस्कृति का समन्वयकारी संदेश मानव जीवन को सुरक्षित रखने और पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

निष्कर्षतः प्राचीन काल से पर्यावरण चिन्तन की समृद्ध परम्परा रही है जिसमें हमारे चिंतकों और ऋषियों ने प्राकृतिक तत्त्वों को पूज्य भावना, मानवीय संवेदना, धर्म एवं पारिवारिक सम्बन्धों से जोड़कर पर्यावरण संरक्षण की कामना की है। आज भी उसी सनातन संस्कृति की अभिव्यक्ति के मूल में वर्तमान पारिस्थितिक संकट के समाधान मिल सकते हैं। हमारे वैदिक मंत्रों में छिपे विज्ञान को समझ कर उन्हें उदात्त मानवीय भावनाओं द्वारा संरक्षित कर प्रकृति की महत्ता समझते हुए पर्यावरण के गूढ़ रहस्य व तथ्यों को उद्घाटित कर पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागृति लाई जा सकती है।

हम कह सकते हैं कि प्रकृति हमारी बाह्य एवं आंतरिक भावों के वातावरण को शुद्ध एवं संतुलित करती है। हम अपनी संस्कृति के अनुकरण द्वारा भोगवादी संस्कृति पर आधारित लालची वृत्ति का त्याग कर पर्यावरण संरक्षण द्वारा कल्याणकारी जीवन–दर्शन अपना सकते हैं। हमारी संस्कृति मानव को आध्यात्मिक शक्ति की दिव्य अनुभूतियों से जो कि आध्यातिम्क मूल्यों की उदारता, व्यापकता और श्रेष्ठता से परिचित करवा कर सांस्कृतिक, धार्मिक,

नैतिक और वैचारिक शुद्धता के साथ–साथ पर्यावरणीय शुद्धता बनाए रखने में भी सहायक हो सकती है।

अत: मानव भारतीय संस्कृति में निहित समग्र जीवन दर्शन को जीवन में धारण कर पर्यावरण संरक्षण को सहजता से अपनाकर नवीन विचारधाराओं तथा प्राचीन मान्यताओं के समन्वय द्वारा व्यापक दृष्टि विकसित कर पर्यावरणीय संकट पर विजय पाकर पारिस्थितिक तंत्र को बनाए रखने में सहयोगी हो सकता है।

संदर्भ

१. महात्मा गाँधी के विचार : संकलन एवं सम्पादन आर.के.प्रभु, यू.आर.राव, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया। (अनुवादक– भवानी दत्त पंड्या, २०११)
२. भारतीय दर्शन : सम्पादक– डॉ. नंदकिशोर देवराज, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, २००२
३. मेरी आत्मकथा (सत्य के प्रयोग) : मोहनदास करमचन्द गाँधी, वृंदा प्रकाशन, दिल्ली।
४. यजुर्वेद १०.२३
५. कबीर वाणी
६. ऋग्वेद १०.६७.२
७. यजुर्वेद ५.४३
८. रामचरितमानस १/८/२
९. वैदिक साहित्य का इतिहास– डॉ. पारसनाथ द्विवेदी चौखंबा, सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, २०१२
१०. पर्यावरण अध्ययन, डॉ.के.के.सक्सेना रीडर सेवानिवृत्त एम एनआई टी, जयपुर।
११. पर्यावरण और समकालीन हिन्दी साहित्य, डॉ. प्रभाकरण हेब्बार इल्लत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
१२. प्रकृति चिंतन– अशोक गुप्ता, बोधी प्रकाशन, जयपुर, २०१२

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www.aiirjournal.com